इकाइ.1 वैदिक संहिताएं, 'भाष्यकार' ,वैदिक एवं लौकिक संस्कृत में अन्तर

इकाई की रूपरेखा

1.1 प्रस्तावना

भारतीय संस्कृत के इतिहास में ही नहीं, आपितु विश्व साहित्य के इतिहास में भी वेदों का स्थान नितान्त गौरवपूर्ण है। भारतीय संस्कृति में श्रुति की दृढ़ आधारशिला के ऊपर भारतीय धर्म तथा सभ्यता का भव्य विशाल प्रासाद प्रतिष्ठित है। अपने प्रतिभाचक्षु के सहारे साक्षात्कृत – धर्मा ऋषियों के द्वारा अनूभूत आध्यात्मशास्त्र के तत्वों की विशाल विमल शब्दराशि का नाम ही 'वेद' है । वेद का 'वेदत्व' इसी में है कि प्रत्यक्ष या अनुमान के द्वारा दुर्बोध तथा अज्ञेय उपाय का ज्ञान वह स्वयं कराता है इसीलिए हम ईश्वर विरोध को सध्न कर सकते हैं परन्तु वेद विरोध हमारे भारतीयों के लिए असह्य हैं। वेद के माहात्म्य को स्वीकार करते हुवे शतपथ ब्राह्मण में कहा गया है कि–धन से परिपूर्ण पृथिवी के दान करने से जितना फल होता है, वेदों के अध्ययन से भी उतना ही फल मिलता है उतना ही नहीं प्रत्युत उससे भी बढ़कर अविनाश–शाली अक्षम्य लोक को मनुष्य प्राप्त करता है।

वेद वस्तुतः एक ही है परन्तु वस्तु एवं स्वरूप भेद के कारण से चार रूप में माने जाते हैं। इन वेदों में सन्निहित मन्त्रों का समूह ही संहिता है तथा इनके मन्त्रों पर जिन महर्षियों ने अपने मत प्रस्तुत किए हैं उन्हें भाष्यकार के रूप में जाना जाता है। इस इकाई में आप वेद–संहिता उनके भाष्यकार तथा वैदिक एवं लौकिक संस्कृत में अन्तर क्या है ? इन विषयों का विस्तृत रूप से अध्ययन कर सकेगें।

1.2 उद्देश्य :

- इस इकाई के माध्यम से आप 'वेद' शब्द के व्यापक अर्थ का ज्ञान प्राप्त करे सकेगें।
- इसके माध्यम से आप वैदिक संहिता के विषय में ज्ञान प्राप्त कर सकेगें ।
- इसके माध्यम से वैदिक भाष्यकारों से परिचित हो सकेगें ।
- वैदिक तथा लौकिक साहित्य में अन्तर स्थापित कर सकेगें ।
- वेद विषयक अनेक प्रश्नों के उत्तर सरलता पूर्वक दे सकेगें ।

1.3 वैदिक संहिताएँ

भारतीय विचारकों के अनुसार नित्य अपौरूषेय मंत्र ब्राह्मणात्मक शब्द राशि कों वेद कहा जाता है मिमांसा दर्शन के आचार्य वेद का लक्षण करते है कि –

अपौरूषेयं वाक्यं वेदः

आचार्य सायण ने इष्ट प्राप्ति और अनष्टि परिहार के लिए अलौलिक परिहार बतलाने वाले ग्रंथ को वेद शब्द से अन्हित किया है। उनके अनुसार– **इष्ट प्राप्ति अनिष्ट परिहारयोः अलौलिक उपायं यो ग्रंथों वेदयति सः वेद'।।** महर्षि कात्यायन और आपस्तम्ब ने अपने यज्ञ– परिभाषा में वेद का दोष रहित लक्षण करते हुए लिखा है कि – मन्त्रब्राम्हणयोर्वेदनामधेयम्'

आचार्य सायण ने वेद का वेदता को सिद्ध करते हुए यह बतालया है कि प्रत्यक्ष और अनुमान के द्वारा जिस उपाय का बोध नहीं होता उस अलौलिक उपाय को बतलाने वाला वेद कहा जाता है। उन्होंने अपने भाष्य भूमिका में उदृत किया है कि–

प्रत्यक्षेणानुमित्या वा यस्तूपायो न बुध्यते।
एनं विन्दति वेदने तस्माद् वेदस्य वेदता।

आपस्तम्ब के द्वारा बताये गये वेदलक्षण में प्रयुक्त मंत्र शब्द की व्याख्या करते हुए कहा गया है कि मननात् मंत्राः अर्थात् जिनके द्वारा यज्ञ यागो का अनुष्ठान निष्पन्न होता है तथा जिनमें उल्लिखित देवाताओं का स्तुति विधान किया जाता है। उन्हें मन्त्र कहते है। ब्राम्हण का अभिप्राय ग्रंथ विशेष है। 'ब्रम्हन् के विविध अर्थो में से एक अर्थ है– यज्ञ वृहवर्धने धातु से निष्पन्न इस शब्द का अर्थ है' वर्धन विस्तार, 'वितान' या यज्ञ। अतः यज्ञ कि विविध क्रियाओं को बतलाने वाले ग्रंथों की सामान्य संज्ञा ब्राम्हण है। वेद तो वस्तुतः एक ही है परंतु स्वरूप भेद के कारण जैमिनीय सूत्र के अनुसार तीन भेद बताए गये है– ऋक्, यजुः और साम।

(1) ऋक्–तेषामृग् यत्रार्थ वशेन पादव्यवस्था।।
सम– जौ० सू–2 |1 |35
(2) गीतिषु समाख्या– जै०सू०– 2 |1 |36

(3) यजुः शेष शब्दः जै०सू० 2।1।37

श्रीमद भद्भागवत ने वेदों की सृष्टि के प्रकरण में एक पद्य वेद चतुष्टय के वर्ण्य विषयक को निर्निष्ट किया है–

ऋक यजुः सामार्थवाख्यान वेदान पूर्वादिभिर्मुखैः।
शस्त्र मिज्यां स्तुतिस्तोमं प्रायाश्चितं त्यधात्क्रमात्।।

अर्थात ऋक् का अर्थ विषय है शस्त्र। जो मंत्र होता द्वारा उच्चरित होता है तथा जिसका गान नहीं किया जाता हैं वह शस्त्र कहलाता है। यजुष का विषय है इज्या अर्थात् यज्ञकर्म। यजुर्वेद से यज्ञ के शरीर की निष्पति होती है। साम का विषय है–स्तुतिस्तोम– स्तुति के लिए प्रयुज्यमान ऋक समुदाय। अथर्व का प्रतिपाद्य विषय है प्रायश्चित। श्रीधर स्वामी का कहना है कि प्रायाश्चित का लक्ष्य ब्राह्मकर्म हैं अन्य ऋात्विजों के कर्म में त्रुटि दिखलाना एवं प्रायश्चित का उपदेश करना ये दोनों ब्रह्मा के कर्म है।

ऋग्वेद का अथर्व वेद का रचना का संबंध याज्ञिक अनुष्ठानों के साथ साक्षात् रूप से भले ही न हो परन्तु अन्य दो संहिताओं सामसंहिता तथा यजुः संहिता का निर्माण यज्ञ–याग के विधानों को लक्ष्य में रखकर किया गया था। यज्ञ कर्म में उपयुक्त चार ऋत्विजों की आवश्यकता होती है।

(1) हौत्र कर्म के सम्पादन का श्रेय होता नामक ऋत्विज्ञ को है, जो ऋग्वेद की ऋचाओं का पाठ कर उपयुक्त देवताओं को यज्ञ में आह्वान करने का कार्य करता है।

(2) औद्गात्रकर्म का संपादन 'उद्गाता नामक ऋत्विज का विशिष्ट कार्य है जो तत्तत् देवताओं की स्तुति में साम का गायन करता है जिसका परिभाषिक नाम 'स्तोत्र' है उद्गाता का संबंध सामवेद से है।

(3) अध्वर्यु ही यज्ञ के मुख्य कर्मों का निष्पादक प्रधान ऋत्विज होता है। उसी के विशिष्ट कर्म के लिए ही यजुर्वेद की संहिताएं भिन्न–भिन्न शाखाएं में संकलित की गई है।

(4) ब्रह्मा नाम ऋतिव्ज का कार्य यज्ञ के बाहरी विघ्नों से रक्षा स्वरों के सम्भाव्य त्रुटियों का मार्जन तथा यज्ञीय अनुष्ठानों में उत्पन्न होने वाले नाना प्रकार के दोषों के दूरीकरण के लिए प्रायश्चित का विधान करना है इसीलिए ब्रह्मा यज्ञ का अध्यक्ष है।

इस प्रकार इन चारों ऋत्विजों के विशिष्ट कर्मों के लिए आवश्यक मंत्रों का संकल्पन चार 'वैदिक संहिता' के रूप में किया गया है। ऋग्वेद के एक मंत्र में इस सिद्धांत की सूचना सम्यक रूप में उपस्थित की गई हैः।

ऋचां त्वः पोषमास्ते पुपुष्वान्
गायत्रं त्वो गायति शक्करीषु।
ब्रह्मा त्वो वदिति जात विघां।
यज्ञस्य मात्रां विनिमीत् 3 त्वः।।

यज्ञ अनुष्ठानों का ध्यान में रखकर भिन्न–भिन्न ऋत्विजों के उपयोग के लिये इन मंत्र संहिताओं को संकलन किया है। अर्थात मन्त्रों के समूह को संहिता कहते है। ये मंत्र संहिताएं चार हैः। ऋक् संहिता (2) यजु संहिता (3) सामसंहिता (4) अथर्व संहिता

1.3.1 ऋक् संहिता

वेद चतुष्टय में ऋग्वेद का गौरव सबसे अधिक माना जाता है। पाश्चात् दृष्टि से ऋग्वेद भाषा तथा भाव के विचार से अन्य वेदों से नितान्त प्राचीन है। अतएव विशेष उपयोगी माना जाता है। भारतीय दृष्टि से भी ऋग्वेद का अक्यर्हित्वपूजनीयता–सर्वत्र स्वीकार की गयी है। तैतिरीय संहिता के अनुसार साम तथा यजु के द्वारा जो विधान किया जाता है। वह शिथिल होता है। परन्तु ऋक द्वारा विहित अनुष्ठान हि दृष्ठ होता है। ऋग्वेद के दो प्रकार के विभाग उपलब्ध होते है।

(1) अष्टक क्रमः– समग्र ग्रंथ आठ अष्टकों में विभक्त किया गया है। प्रत्येक अष्टक में 8 अध्याय होते है। इस प्रकार पूरा ऋग्वेद 64 अध्यायों का ग्रंथ है। प्रत्येक अध्याय के अवान्तर विभाग का नाम वर्ग है जो अध्ययन के सौकर्य के लिये किया गया है। औसतन प्रत्येक वर्ग में पांच मंत्र है समस्त वर्गो की संख्या 2006 है।

(2) मंडल क्रमः–

ऋग्वेद 10 मंडलों में विभक्त है। इसी कारण ऋग्वेद दशतयी के नाम से निरूक्तादि ग्रंथों में प्रसिद्ध है। प्रत्येक मंडल में अनेक अनुवाक; अनुवाक के भीतर सूक्त के अंतर्गत मंत्र या ऋचाएं है। ऋग्वेद के दसों मंडलानुसार क्रमशः व्यवस्था यों है–
91+43+62+58+87+75+104+104+92+114+191। इन सूक्तों के अतिरिक्त 11 बालखिल्य के नाम से विख्यात है। ऋग्वेद के समस्त सूक्तों की ऋचाओं की संख्या हैः 105801/4 अर्थात् प्रत्येक सूक्त 10 मंत्र.ों का औसत है। ऋचाओं के शब्दों की संख्या 1 लाख 53 हजार, 8 सौ 26 तथा शब्दों के अक्षरों की संख्या चार लाख बत्तीस हजार है। अर्थात् मोटे तौर पर प्रत्येक मंत्र में पन्द्रह शब्द है और प्रत्येक शब्द में तीन अक्षर पाये

जाते हैं। यह गणना सर्वानुक्रमणी के आधार पर है। पाश्चात्य विद्वानों का कहना है कि ऋग्वेद के मंडलों में प्राचीन तथा आर्वाचीन मंत्रों का समुदाय संग्रहित किया गया है द्वितीय मंडल से लेकर सप्तम मंडल तक का भाग ऋग्वेद का केंद्रीय अतएव अत्यंत प्राचीन अंश है। इसमें प्रत्येक मंडल का संबंध किसी विशिष्ट ऋषि या उनके वंशजों के साथ निश्चत रूप से उपलब्ध होता है। वंश विशेष के संबंध के कारण इन मंडलों के अंग्रेजी में 'फेमिली बुक' कहने की चाल है।

ऋग्वेद शाखाएंः–

महाभाष्य के अनुसार ऋग्वेद की समस्त शाखाएं 21 है। जिनमें चरणव्यु के कथनानुसार मुख्य ये 5 शाखाएं है।

(1) शाकल शाखाः– ऋग्वेद में आजकल प्रचलित संहिता शाखा–शाकल की है। शाकल शाखा अनुसार ऋग्वेद का अंतिम मंत्र हैः– समानीव आकूतिः (10।191।14) । इसमें 1017 सूक्त है।

(2) बाष्कल शाखाः– बाष्कल शाखानुसार ऋग्वेद का अंतिम ऋचा ''तच्छयोश वृर्णामहे'' है। यह ऋचा ऋक्परिशिष्ट के अंतिम सूक्त का अंतिम मंत्र है। बाष्कल शाखा में 1025 सूक्त है। इन अधिक आठ सूक्तों में एक सज्ञान सूक्त है जो इस संहिता में अंत में है।

(3) आश्वलायनः– आश्वलायनों की संहिता तथा ब्राम्हणों का अस्तित्व इस समय नहीं है परन्तु कबीन्द्राचार्य (16 शताब्दी) की सूची में इन ग्रंथों का नामोल्लेख स्पष्टतः पाया जाता है। आज इसके अलावा गृह्य एवं श्रोत सूत्री ही उपलब्ध है।

(4) शांखायनः– इसकी संहिता तो नहीं परन्तु ब्राम्हण सम्मति है शांखयान और कौषीतकि शाखा एक है परन्तु वस्तुतः दोनों भिन्न प्रतीत होते है। दोनों संहिताओं में मंत्र वहीं है उनमें न्यानाधिकता नही है। केवल मंत्र क्रम में भेद है।

(5) माण्डूकायनः– इस शाखा की भी बहुत कुछ पुस्तकें पहिले उपलब्ध होती थी आजकल कुछ भी उपलब्ध नहीं है।

1.3.2 यजुः संहिता

'अनियताक्षरावसानों यजुः' आर्थात अक्षरों की संख्या जिनमें नियत न हो वही यजुः गत्यात्माको यजुः तथा शेषे यजुःशब्दः का तात्पर्य यही है कि ऋक तथा साम से भिन्न गत्यात्मक मंत्रों को अभिधान ही यजु है। यजु वेद के दो सम्प्रदाय है। (1) ब्रह्म सम्प्रदाय (2) आदित्य सम्प्रदाय शतपथ ब्राम्हण के अनुसार आदित्य यजुः शुक्ल–यजुष के नाम से प्रसिद्ध है तथा याज्ञवल्क्य के द्वारा आख्यात है तथा ब्रह्म सम्प्रदाय का प्रतिनिधि कृष्णा यजुर्वेद है। यजुर्वेद के कृष्णत्व और शुक्लत्व उसके स्वरूप के आधार पर है। शुक्ल यजुवेद में दर्पणौर्यमासदि अनुष्ठानों के लिए आवश्यक केवल मंत्रों का संकलन है। उधर कृष्ण यजुर्वेद में मंत्रों के साथ तन्नियोजित ब्राह्मणों का मिश्रण है।

कृष्ण यजुर्वेदः

चरणव्यूहके अनुसार कृष्णयजुर्वेद की 85 शाखाएं है जिनमें आज केवल 4 शाखाएं तथा तत्सबंधी पुस्तकें उपलब्ध होती है। (1) तैत्तिरीय (2) मैत्रायणी (3) कठ (4) कपिष्ठल–कल

तैत्तिरीय शाखाः

तैत्तिरीय शाखा का प्रसार देश दक्षिण भारत है। कुछ महाराष्ट्र प्रान्त तथा समग्र आन्ध्र–द्रविड़ देश इसी शाखा का अनुयायी है। समग्र वैदिक ग्रंथों–संहिता ,ब्राम्हण, सूत्र आदि की उपलब्धि से इसका वैशिष्टय स्वीकार किया जा सकता है। अर्थात् इस शाखा ने अपनी संहिता ब्राम्हण आरण्यक, उपनिषद् श्रौतासूत्र तथा गुह्यसूत्र को बड़ी तत्परता से अक्षण्य बनाये रखा है। पुरी संहिता में काण्ड, तदन्तर्गत पपप्रपाठक तथा 631 अनुवादक है।

मैत्रायणीय शाखाः– कृष्ण यजुर्वेद की यह शाखा यजुर्वेदीय संहिताओं के समान यहां भी मंत्र तथा ब्राम्हणों का समिश्रण है। इस संहिता में चार काण्ड है। समग्र संहिता में शपथ मंत्र है जिनमें 2144 ऋचायें ऋग्वेद से उधृत है जो ऋग्वेद के भिन्न भिन्न मंडलों में पाये जाते है।

कपिष्ठल कठ शाखाः– चरणव्युह के अनुसार चरक शाखा के अंतर्गत कठाः प्राच्यकठाः तथा कपिष्ठलकठाः का उल्लेख मिलता है। जिससे इनके शाखा संबंध का पुरा परिचय मिलता है।

इस संहिता की कए अधुरी प्रति संपूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय के 'सरस्वती भवन' में उपलब्ध हैं। यही से इसकी प्रतिलिपि यूरोप के वैदिक विद्वानों के अनुसाशीलन के लिए भेजी गयी थी। ऋग्वेद के समान ही यह अष्टक तथा अध्यार्यों में विभक्त है। इसमे निम्नलिखित अष्टक तथा तदनन्तर अध्याय उपलब्ध है।

प्रथम अष्टक –पूर्ण, आठों अध्याय के साथ

द्वितीय अष्टक–त्रुटित–9 से लेकर 24 अध्याय तक

तृतीय अष्टक –त्रुटित विल्कुल त्रुटित

चतुर्थ अध्याय– 32 वें अध्याय को छोड़कर समस्त अध्याय उपलब्ध है।

पंचम अध्याय– आदिम अध्याय को छोड़कर सातों अध्याय उपलब्ध

पष्टठ अध्याय – 43 अनुपलब्ध, अन्य सभी उपलब्ध

कठ शाखा :– कठशाखा में पांच खण्ड है जो क्रमशः इठिमिका, माध्यमि, ओरिमिका या_जानुवाक्या तथा अश्वमेधाद्यनुवचन के नाम से प्रसिद्ध है। इन खण्डों के टुकड़ो का नाम 'स्थानक' है। इस शाखा में स्थानक की संख्या–40, अनुवाचनों की– 13, अनुवाकों की 843, मंत्रों 3091 तथा मंत्र ब्राम्हणों की सम्मिलित संख्या 18 हजार है।

शुक्ल यजुर्वेद

काण्व संहिता :–

काण्व संहिता का प्रचार आज कल महाराष्ट्र प्राप्त में है और माध्यन्दिन शाखा उत्तर भारत में परन्तु प्राचीन काल में काण्व शाखा का अपना प्रदेश उत्तर भारत ही था। क्योंकि एक मंत्र में कुरू तथा पंचाल देशीय राजा का निर्देश संहिता में मिलता है। महाभारत के आदिपर्व के अनुसार शकुन्तला को पौष्य पुत्री के नाम से विख्यात एक नदी है अतः काण्वों को प्राचीन संबंध उत्तर प्रदेश से होने में कोई विपचत्ति नहीं दृष्टिगत होती है। काण्व संहिता का एक सुंदर संस्ककरण मद्रास के अंतर्गत किसी 'आनन्दवन नगर' तथा औघ से प्रकाशित हुआ है। जिसमें अध्यायों की संख्या 40, अनुवादकों की 328 तथा मंत्रों की 2086 है। अर्थात माध्यदिन संहिता के मंत्रो (1974) से यहां 111 मंत्रों अधिक है काण्व शाखा का संबंध पांचराम आगम के साथ विशेष्ज्ञ रूप से पांचरात्र संहिताओं में सर्वत्र माना गया है।

1.3.3 सामसंहिता

वैदिक संहिताओं में साम का महत्व नितान्त गौरवमय माना जाता है। वृहद्देवता का कहना है कि जो पुरूष साम को जानता है वहीं वेद के रहस्य को जनता हैः– सामानि यो वेति स वेदतत्वम्।

गीता में श्री कृष्ण ने सामवेद को अपना स्वरूप बताया है। वेदानां सामवेदोऽस्मि''

सामवेद के दो प्रधान भाग होते है– आर्चिक तथा गान। आर्चिक का शब्दिक अर्थ है ऋक–समूह। जिसके दो भाग है पूर्वार्चिक तथा उत्तरार्चिक प्रर्वाचिक में 6 प्रपाठ या अध्याय हैं। प्रत्येक प्रपाठ के दो अर्ध या खण्ड है और प्रत्येक खण्ड एक दशति और हर एक दशति में ऋचाएं है। पूर्वाचिक मे कुल मंत्र 650 है। उत्तरार्चिक में 9 प्रपाठ है। पहले प्रपाठ के दो–दो भाग में जो प्रपाठकार्ध कहे जाते है, परन्तु इनमें से अंतिम चार प्रपठकों में तीन–तीन अर्ध हैं यह राणायनीय शाखानुसार है। उत्तरार्चिक में समग्र मंत्रों की संख्या 1225 है।

सामवेद की शाखाएंः–

पुराणोपलब्ध साम प्रचार के आधार पर सामवेद की सहस्त्र शाखाएं बतायी जाती है जिसकी पुष्टि पंतजलि ने 'सहस्त्रवत्माः सामवेद वाक्य कह कर की है। आजकल प्रपंच हृदय,दिव्यावदान, चरणव्यूह तथा जैमिनी गृहयसूत्र के पर्यालोचन से 13 शाखांए, जिनका वर्णन सामतर्पण के अवसर पर प्राप्त होता है इस प्रकार है। 'राणायन –सात्यमुगि॰–व्यास –र्भागुरी –औलुण्डि –भानु–मानोपमन्वय –काराटि –मशक–गार्ग्य–बार्षगण्यकौथुमि– शालिहोत्र, जैमिनि –त्रयोदशैते ये सामगाचार्याः स्वाति कुर्वन्तु तर्पिताः।' इन तेरह आचार्यों में से केवल तीन ही आचार्यो की शाखाएं मिलती है।

(1) कौथुमीय

(2) राणायनीय

(3) जैमिनीय

(1) कौथुमीय शाखाः– इसकी संहिता सर्वाधिक लोकप्रिय है, इसी की ताण्ड्य नामक शाखा भी मिलती है। जिसका किसी समय विशेष प्रभाव तथा प्रसार था। सुप्रसिद्ध छान्दोग्य उपनिषद् इसी शाखा से संबंधित है।

(2) राणायनीय शाखाः– इसकी संहिता कौथुमों से भिन्न नहीं है। दोनो मंत्र गठना की दृष्टि से एक ही है। केवल उच्चारणय में पार्थक्य है कौथुमीय लोग जहां ःहाबु तथा 'रायी' उच्चारण करते है। राणायनीयों की एक अवांनतर शाखा सात्यमुग्रि है जिसकी उच्चारण त्रुटि आलोचनीय है। ये गण एकार ओकार का ह्रस्व उच्चारण करते थे।

(3) जैमिनीय शाखाः– इस शाखा के समग्र अंश संहिता ब्राम्हण श्रौत तथा गृह्यसूत्र के उपलब्ध है। इसके मंत्रों की संख्या 1686 है अर्थात् कौथुमीय शाखा 182 मंत्र कम है। दोनों में पाठभेद भी नाना प्रकार के हैं। उत्तरार्चिक में ऐसे अनेक नवीन मंत्र है जो कौथुमीय संहिता में उपलब्ध नहीं होते, परन्तु जैमिनीयों के समागम कौथुनों से लगभग एक हजार अधिक हैं। कौथुमगान 2722 है परन्तु इनके स्थान पर जैमिनीयों के गान 3681 हैं।

1.3.4 अथर्व संहिता

वेदों में अन्यतम् अर्थववेद एक भूयसी विशिष्टता से संवालित है। ऋग्वेद आदि द्वारा स्वर्गलोक की प्राप्ति आदि परलोक सम्बधी विषयों का प्रतिपादन है परन्तु अथर्ववेद ऐहिक फल देने वाला भी है। इस जीवन को सुखमय तथा दुःखरहित बनाने के लिए जिन साधनों की आवश्यकता होती है। उनकी सिद्धी के लिए नाना अनुष्ठानों का विधान इस वेद में किया गया है। इसमें 20 काण्ड, 731 सूक्त तथा 5987 मंत्र है। अथर्ववेद के स्वरूप की मिमासा से पता चलता है कि यह दो धाराओं के मिश्रण का परिणत फल है इनमे से एक अथर्वधारा और दूसरी अ"रोधारा अथर्व धारा दृष्ट मंत्र शांति पुष्टि कर्म से संबंध है। इसका संकेत भागवत में अथर्वणेऽदात् शांति यया यज्ञो वितन्यते के रूप में उपलब्ध होता है। अ"रोधारा अभिचारिक कर्म से संबंध रखती है। और यह इस वेद के जन सामान्य में प्रिय होने का संकेत

अथर्वसंहिता की शाखाएंः–पतंजलि ने पस्पशाह्निक में नवधाऽऽथर्वणों वेदः लिखकर इस वेद की 9

शाखाओं को उल्लेख किया है जो इस प्रकार है (1) पिप्पलाद (2) स्तौद (3) मौढ (4) शौनकीय (5) जाजल (6) जलद (7) ब्रह्मवद (8) देवदर्श (9) चारण वैध इन शाखाओं मे पिप्पलाद तथा शौनक के अनुसार कतिपय ग्रंथ उपलब्ध होते हैं। अन्य शाखाओं का नाम मात्र शेष है।

(1) पिप्पलाद शाखाः– प्रपचंहृदय का कथन है कि पिप्पलाद शाखा की मंत्र संहिता 20 काण्ड वाली है। तथा इसके ब्राम्हण में आठ अध्याय विद्यमान है। पिप्पलाद शाखा की एक मात्र प्रति शारदा लिपि में कश्मीर में उपलब्ध हुई जिसे कश्मीर–नरेश ने जर्मन विद्वान डा. राथ को 1885 में उपहार में भेज दी। उसी की प्रति 1901 में अमेरिकी से फोटो मात्र तीन बड़ी–बडी जिल्दों में छपा था।

(2) मौढ शाखाः– महाभाष्य तथा शावर भाष्य में इसका उल्लेख मिलता है। अथर्व परिशिष्ट ने मौढ तथा जलद शाखा वाले पुरोहित के रखने से राष्ट्र ने नाश की आशंका प्रकट की है, जिससे इन शाखाओं के कम से कम अस्तित्व या प्रचलन का पता चलता है।

पुरोधा जलदो यस्यमौदो वा स्यात् कदाचन।
अब्दाद दशभ्यो मासेभ्यो राष्ट्रभ्रं शंस गच्छति।।

शौनक शाखाः– आजकज प्रचलित संहिता तथा गोपथ– ब्राह्मण इसी शाखा के है। तौद जाजल, ब्रह्मवद, देवदर्श, नाम मात्र प्रसिद्ध है। अथर्ववेद की अंतिम शाखा चारण वैद्यों के विषय में कौशिक सूत्र की व्याख्या तथा अथर्व परिशिष्ट से कुछ पता चलता है। वायु पुराण से ज्ञात होता है कि इस शाखा की संहिता में छः हजार छब्बीस मंत्र थे परन्तु यह संहिता अभी तक उपलब्ध नहीं हुई है।

अथर्ववेद की त्रिविध परम्पराः–

अथर्ववेद को छोड़कर अन्य तीन वेदों की केवल एक ही संहिता पायी जाती है। जो मुद्रित और प्रकाशित है। परन्तु अथर्व वेद की तीन संहिताओं का पता चलता है। अथर्ववेदीय कौशिक सूत्र केदारिल भाष्य में इन त्रिविध संहिताओं के नाम तथा स्वरूप का परिचय दिया गया है। इन संहिताओं के नाम है। (1) आर्षी संहिता (2) आचार्य संहिता (3) विधि प्रयोग संहिता।

इन संहिताओं में ऋषियों के द्वारा परमपरागत प्राप्त मंत्रों के संकलन होने से इसे ऋषि संहिता कहा जाता है। अथववेद का आजकल जो विभाजन काण्ड, सूक्त तथा मंत्र रूप में प्रकाशित हुआ है इसी जिसका विवरण दारिल भाष्य में इस प्रकार पाया जाता है। 'येन उपनीय शिष्यं पाठयति सा आचार्य संहिता'। अर्थात् उपनयन संस्कार करने के पश्चात् गुरू जिस प्रकार से शिष्य को वेद का अध्यापन करता है वही आचार्य संहिता है। विधि प्रयोग संहिता वह जिस के मंत्रों के किसी विशिष्ट विधि के अनुष्ठान के लिए किये जाते है। इस अनुष्ठान के अवसर पर एक ही मंत्र के विभिन्न पदो के विभक्त करके नये–नये मंत्र किए जाते है।

यथा–ऋतुभ्यष्टवाऽऽर्तवेभ्यो, मादभ्यों संवत्सरेभ्यः।
धात्रे विधायै समृधे भूतस्य पतये यजे।।

अब इस मंत्र को विभक्त करके आठ मंत्र अनुष्ठान के लिए तैयार किए जाते है। जैसे–
(1) ऋतुभ्य त्वा यजे स्वाहा।
(2) आर्तवेभ्य वेभ्यः त्वा यजे स्वाहा।
(3) मादभ्यः त्वा यजे स्वाहा।
(4) संवत्सरेभ्य त्वा यजे स्वाहा।

विधि प्रयोग का यह पहिला प्रकार है इसी भाती से इसके चार प्रकार और होते है। इनमें शब्दों को जोड़कर आवर्तन द्विगुणित कर क्रम परिवर्तन कर तथा संपूर्ण मंत्र के अर्थ भाग को पूर्ण मानकर प्रयोग किया जाता है।

1.4 वेद भाष्यकार

गुप्तकाल में वैदिक धर्म का महान् अभ्युदय हुआ। इतिहासवेत्ता पाठक भलीभांति जानते हैं कि गुप्त सम्राट 'परमभागवत' की उपाधि से अपने को विभूषित करना गौरवास्पद समझते थे। इन्होंने वैदिक धर्म का पुनरूद्धार संपन्न किया। सप्तमशतक में आचार्य कुमारिल ने मीमांसाशास्त्र की भूयसी प्रतिष्ठा

की। इनके व्यापक प्रभाव से वेदाध्ययन की ओर पण्डितों की प्रवृति पुनः जागरित हुई। बौद्धकाल में वेदों की ओर जनता की दृष्टि कम थी, परन्तु कुमारिल ने बौद्धों की युक्तियों का सप्रमाण खण्डन कर वेद की प्रमाणिकता सिद्ध कर दी।

(1) ऋग्वेद – भाष्य

ऋग्वेद संहिता का सबसे पहला उपलब्ध भाष्य स्कन्दस्वामी का है। वैदिक साहित्य में यह भाष्य बड़े आदर सम्मान की दृष्टि से देखा जाता है। ग्रंथकार की प्राचीनता के साथ–साथ ग्रंथ के अंतरग गुणों ने उसे उच्च आसन पर बैठाया है। भाष्य के अंत में दिए गए कतिपय श्लोकों से इनके देशादि का पर्याप्त परिचय मिलता है। स्कन्दस्वामी गुजरात की प्रख्यात राजधानी वलभी के रहने वाले थे। इनके पिता का नाम भर्तृध्रुव था। इसका पता निम्नलिखित श्लोक से, जो ऋग्वेद भाष्य के प्रथमाष्टक के अंत मे मिलता है, चलता है –

वलभीविनिवास्येतामृगर्थागमसंहृतिम्।

भर्तृध्रुवसुतश्चक्रे स्कन्दस्वामी यथास्मृति।।

स्कन्दस्वामी –

आचार्य स्कन्दस्वामी के समय का भी निर्णय पर्याप्त रीति से किया गया। कलियुग के 3740 वर्ष बीतने पर भाष्य बनाया गया। कलियुग का आरंभ वि. सं. पूर्व 3045 अर्थात ईसा पूर्व में माना जाता है, अतः हरिस्वामी के शतपथभाष्य का निर्माण काल (3740–3045) = वि० सं० 694 = 639 ई० में माना जा सकता है। इसके पहले स्कन्दस्वामी ने अपना ऋग्भाष्य बना डाला था, तथा हरिस्वामी को वेद पढाया था। अतः आचार्य स्कन्दस्वामी का काल वि.सं. 682 (625 ई०) के आसपास अनुमानतः सिद्ध है। इस प्रकार स्कन्दस्वामी हर्ष तथा बाणभट्ट के समकालीन हैं।

स्कन्दस्वामी का ऋग्भाष्य अत्यन्त विशद है। इसमें प्रत्येक सूक्त के आरंभ में उस सूक्त के ऋषि तथा देवता का उल्लेख किया गया है, तथा इसके बोधक प्राचीन अनुक्रमणियों के श्लोक उद्धृत किए गए हैं। निघण्टु, निरूक्त आदि वैदिकार्योपयोगी ग्रंथों से भी उपयुक्त प्रमाण स्थान–स्थान पर दिए है। भाष्य खूब सरल है तथा मिताक्षर है। व्याकरण–संबंधी तथ्यों का उल्लेख संक्षेप में ही किया गया है। सायणभाष्य कें प्रथमाष्टक की तरह व्याकरण का विस्तार से प्रदर्शन इसमें नहीं है। स्कन्दस्वामी के भाष्य का प्रभाव सायण के ऋग्वेद के केवल आधे भाग–चौथे अष्टकतक ही उपलब्ध हुआ है। शेष भाग की पूर्ति दो आचार्यो ने की है, जिनका वर्णन आगे किया जायेगा। अनन्तशयनग्रन्थावली में यह भाष्य प्रकाशित होने लगा है।

नारायण– ऋग्वेद के भाष्य में वेंकटाधव ने लिखा हैं।–

स्कन्दस्वामी नारायण उद्गीथ इति ते क्रमात्।

चक्रुः सहैकमृग्भाष्यं पदवाक्यार्थगोचरम्।।

अर्थात् स्कन्दस्वामी, नारायण तथा उद्गीथ ने क्रम से मिलकर एक ही ऋग्भाष्य बनाया। इससे यह स्पष्ट है कि नारायण ने ऋग्भाष्य की रचना में स्कन्दस्वामी की सहायता की थी। 'क्रमात्' शब्द से अनुमान होता है कि ऋग्वेद के मध्य भाग पर नारायण ने अपना भाष्य लिखा है। कुछ लोग सामभाष्यकार माधव के पिता नारायाण तथा इस नारायण को एक ही व्यक्ति मानते है, परन्तु इसके लिए अभी कोई सबल प्रमाण नहीं मिला है। इसका भी समय विक्रम की सातवीं शताब्दी में अनुमानतः सिद्ध है।

उद्गीथ :–

उद्गीथ के नाम का उल्लेख सायण तथा आत्मानन्द ने अपने भाष्य में किया है। इनका भाष्य स्कन्दस्वामी के भाष्य की शैली पर जान पड़ता है। इसका भी प्रभाव सायण के भाष्य पर पड़ा

था। उद्गीथ सायण से पूर्ववर्ती भाष्यकार है, क्योंकि सायण ने ऋग्वेद के मंत्र के भाष्य में उद्गीथ की व्याख्या का उल्लेख किया है और यह व्याख्या उद्गीथ के भाष्य में उपलब्ध होती है। यह भाष्य ऋग्वेद के दशम मंडल के सूक्त 5 से लेकर सूक्त 86 के पांचवे मंत्र तक उपलब्ध होता है जिसमें आदि के अंश को डी. ए.वी. कालेज के शोध विभाग से प्रकाशित किया है (लाहौर, 1935), शेष अंश अभी तक मुद्रित नहीं है। उद्गीथ की विपुल सामग्री का उपयोग किया है। इसीलिए तिलक वैदिक संशोधन मंडल से प्रकाशित सायण भाष्य के त्रुटित अंश या संदिग्ध पाठ का शोधन उद्गीथ की सहायता से किया गया है। इस प्रकार इस भाष्य का महत्व सायणभाष्य के पाठ–शोधन के लिए भी कम नहीं है।

माधव भट्ट

ऋग्वेद के माधव नामक चार भाष्यकारों का अब तक पता चला हैं। इसमें एक तो सामवेद–संहिता के भाष्यकार हैं। तीन माधव नामधारी भाष्यकार का संबंध ऋग्वेद के साथ है। इनमें से एक तो सायण–माधव ही है। य़द्यपि सायण ने ऋक्संहिता पर भाष्य लिखा तथापि माधव के द्वारा इस कार्य में प्रर्याप्त सहायता दिये जाने के कारण माधव भी भाष्यकार के रूप में किन्ही स्थानों में गृहीत किये गये हैं। अतएव एक माधव तो सायणाचार्य ही हुए। दूसरे माधव वेंकटमाधव है, जिनका निर्देश प्राचीन भाष्यों में मिलता है। एक अन्य माधव यह भी हैं। जिनकी प्रथम अष्टक की टीका अभी हाल में मद्रास विश्वविद्यालय से प्रकाशित हुई है। यह टीका बड़ी ही सारगर्भित है। अल्पाक्षर होने पर भी मंत्रों के अर्थ समझने में नितान्त महत्वपूर्ण है। कुछ विद्वान् इस माधवभट्ट और वेंकटमाधव को एक ही व्यक्ति मानते हैं, परन्तु दोनों व्यक्तियों के लिए भाष्यों की तुलना करने पर स्पष्ट प्रतीत होता है कि माधवभट्ट वेंकट माधव से नितान्त भिन्न है एवं उनसे प्राचीनतर है। इस सिद्धान्त पर पहुंचने के साधक अनेक प्रमाण है। पहली बात यह है कि सायण ने माधव के नाम से जिस अर्थ का उल्लेख किया है। वह नयी टीका में बिलकुल उपलब्ध होता है। जान पड़ता है कि यह ग्रंथ बहुत दिनों से लघु–प्रायस हो गया था। इसलिए देवराज यज्वा ने अपनी निघण्टु टीका में वेकटमाधव और माधवभट्ट के व्यक्तिगत को सम्मलित कर दिया है। वेंकटमाधव के नाम से जितने उद्धरण उन्होनें दिये हैं वे सब के सब के सब इस टीका में उपलब्ध हो सकते है, यदि वह पूरी उपलब्ध हो जाय। हमारे मित्र पं. सीताराम जोशी ने खोज निकाला है। कि देवराज के लगभग आधे निर्देश प्रकाशित टीका में ही उपलब्ध हो जाते है।

वेंकटमाधव–

माधव ने समग्र ऋक्संहिता पर अपना भाष्य लिखा है। कुछ लोगों का अनुमान है कि माधव ने ऋग्वेद पर दो भाष्य लिखे हैं। पहले भाष्य के प्रथम अध्याय के अंत में माधव ने अपना परिचय लिखा है, जिससे प्रतीत होता है। कि इनके पितामह का नाम माधव, पिता वेंकटचार्य, मातामह का भवगोल और माता का नाम सुंदरी था। इनका मातृगोत्र वशिष्ठ तथा अपना गोत्र कौशिश था। इनका एक अनुज भी था, जिसका नाम था संकर्षण। इनके वेंकट तथा गोविंद नामक दो पुत्र थे। ये दक्षिणापक्ष के चोल देश (आन्ध्र प्रान्त) के रहने वाले थे। माधव का भाष्य अत्यंत संक्षिप्त है। उन्होंने 'वर्जयन् शब्दविस्तारं शब्देः कति–पयैरिति'' लिखकर इस बात को स्वंय स्वीकार किया है। इसमें केवल मंत्रों के पदों की ही व्याख्या है। संक्षिप्त बनाने की भावना से प्रेरित होकर माधव ने मूल के पदों का भी निवेश अपने भाष्यों में बहुत कम किया है। केवल पर्यायवाची पदों को देकर ही माधव ने मंत्रार्थ को स्पष्ट करने का श्लाघनीय प्रयत्न किया है। इस भाष्य के पढ़ने से मंत्र का अर्थ बड़ी सुगमता से समझ में आ जाता है। स्कन्दस्वामी के भाष्य की अपेक्षा भी यह संक्षिप्त है, सायण के भाष्य से तो कहना ही क्या ? व्याकरणय संबंधी तथ्यों को निर्देश इसमें है ही नहीं। हाँ, प्रायः सर्वत्र ब्राम्हण–ग्रंथों के प्रमाण सुंदर रीति से दिए गए है, जिससे माधव की ब्राम्हण–ग्रंथों में विशेष व्युत्पित्ति प्रतीत होती है। माधव ने स्वयं ब्राम्हणों को वेदों गूढ़ अर्थो के समझने में नितान्त उपयोगी बतलाया है। उनका कहना है। जिसने केवल व्याकरण निरूक्त का अनुशीलन किया है। वह संहिता का केवल चतुर्थाश जानता ही है, परन्तु जिन्होंनें ब्राम्हण ग्रंथों के अर्थ का विवेचन श्रमपूर्वक किया है, शब्द रीति के जाननेवाले वे ही विद्वान (जिसे माधवने 'वृद्ध' कहा है) वेद के समस्त अर्थ को यथार्थतः कह सकते है– **संहितायास्तुरीयांशं विजानन्त्यधुनातनाः।**

निरूक्तव्याकरणयोरासीत् येषां परिश्रमः।।

अथ ये ब्राम्हणार्थानां विवेक्तारः कृतश्रमाः।

शब्दीरीतिं विजानन्ति ते सर्वं कथयन्त्यपि।।

धानुष्कयज्वा

घानुष्कयज्वा नाम के किसी तीनों वेदों के भाष्यकार का नाम वेदाचार्य की सुदर्शनमीमांसा में कई बार आया है। इन स्थानों पर वे 'त्रिवेदी भाष्यकार' तथा 'त्रयीनिष्टवृद्ध' कहे गये है। अतः इनके वेदत्रयी के प्रमाणिक भाष्यकार होने में तनिक भी संदेह नहीं रहता। ये एक वैष्णव आचार्य थे। इन उल्लेखों के अतिरिक्त न तो इनके विषय में कुछ पता है और न उनके वेदभाष्य के विषय में। इनका समय विक्रम संवत् 1600 से पूर्व होना चाहिए।

आन्नदतीर्थ–

आनन्दतीर्थ का ही दूसरा नाम 'मध्व' है, जिन्होंने द्वैतवादी सुप्रसिद्ध माध्व वैष्णव सम्प्रदाय को चलाया। इनके लिखे अनेक ग्रंथ हैं, जिनमें ऋग्वेद के कतिपय मंत्रों की व्याख्या वाला देवभाष्य भी है। यह भाष्य छन्दोबद्ध है तथा ऋग्वेद के प्रथम मंडल के सूक्तों पर ही है। इसमें राघवेन्द्र यति का यह कथन पर्याप्त रूप से प्रमाणित है– ऋक्शाखागतैकोत्तरसहस्त्रसूक्तमध्ये कानिचित् चत्वारिंशत् सूक्तानि भगवत्पादै दैः व्याख्यातानि'।

भगवान् श्रीकृष्ण ने गीता में अपने विषय में कहा है कि 'वेदैश्च सवैरहमेव वेद्यः अर्थात् समस्त वेद मेरा ही प्रतिपान करते है। अतः वैष्णव सम्प्रदाय के आचार्य आनन्दतीर्थ का वेदों में भगवान् नारायण का सर्वत्र प्रतिपादन देखना नितान्त युक्तियुक्त है। अपने भाष्य के आरंभ में वे स्वयं कहते हैं–

स पूर्णत्वात् पुमान् नाम पौरूषे सूक्त ईरितः।
स एवाखिलेवेदार्थः सर्वशास्त्रार्थ एव च।।

इसी दृष्टि को अपने सामने रखकर इस वैष्णवाचार्य ने वैदिक ऋचाओं का अर्थ किया है। जयतीर्थ के कथनुसार इस मध्वभाष्य मे आधिभौतिक तथा आधिदैविक अर्थ के अतिरिक्त आध्यात्मिक अर्थ का सुंदर प्रदर्शन किया गया है। इस प्रकार ऋग्वेद का यह 'माधव' भाष्य कई अंशों के विलक्षणता के ऊपर पड़ा है। द्वैतवादियों में इनकी प्रसिद्ध कम नहीं है। इस मध्यभाष्य के सुप्रसिद्ध माध्व आचार्य जयतीर्थ ने ग्रंथ–रचना के तीस साल के भीतर ही मन् अपनी तथा नारायण ने 'भावरत्नप्रकाशिका' नाम दूसरी वृत्ति लिखी। इनके लेखक वैदिक साहित्य के अच्छे विद्वान् प्रतीत होते है। इनकी टीका और विवृत्तियों के मध्वभाष्य के समझने में बड़ी सहायता मिलती है। आनन्द तीर्थ का आविर्भाव विक्रम की तेरहवीं सदी के मध्य लेकर 14 वीं के मध्य तक है। सुनते है कि 80 वर्ष तक जीवित रहे (1255–1335 वि.सं)।

आत्मानन्द–

आत्मानन्द ने ऋग्वेद के अंतर्गत 'अस्य–वामीय' सूक्त पर अपना भाष्य लिखा है। इस भाष्य में उद्धृत ग्रंथकारों में स्कंद, भास्कर आदि का नाम मिलता है, परन्तु सायण का नाम नहीं मिलता। इससे ये सायण से पूर्व के भाष्यकार प्रतीत होते हैं। इनके द्वारा उद्धृत लेखकों में मिताक्षरा के कर्ता विज्ञानेश्वर (ई० 1070–1100) तथा स्मृतिचन्द्रिका के रचयिता देवणभट्ट (13वीं शर्ती ई०) के नाम होने से हम कह सकते है इनका आविर्भाव–काल विक्रम की चौदहवीं शताब्दी है।

यह भाष्य भी अपनी विशेषता रखता है। आत्मानन्द ने भाष्य के अंत में लिखा है कि स्कन्दस्वामी आदि का भाष्य यज्ञपरक है; निरूक्त अधिदेव परक है; परन्तु यह भाष्य अध्यात्म–विषयक है। इस पर भी मूलरहित नहीं है। इसका मूल विष्णुधर्मोतर है–

अधियज्ञविषयं स्कन्दादिभाष्यम्, निरूक्तमधिदैवतविषयम् इदन्तु भाष्यमध्यात्मविषयमिति।
न च भिन्नविषयाणामणां विरोध। अस्य भाष्यस्यमूलं विष्णुधर्मोत्तरम्।

भाष्य के निरीक्षण करने से पता चलता है कि आत्मानन्द अपने विषय के एक अच्छे जानकार थे। इसमें प्रत्येक मंत्र का अर्थ परमात्मा को लक्ष्य कर रहा है। यह इस भाष्य की बड़ी विशेषता है।

सायण–सायणाचार्य विजयनगर के संस्थापक महाराज बुक्क तथा महाराज हरिहर के अमात्य तथा सेनानी भी थे। बुक्क के प्रधान अमात्य का पद इन्होंने 16 वर्षो (13ई०से लेकर 1378ई०) तक अलंकृत

किया। तदनन्तर हरिहर द्वितीय का मन्त्रिकार्य अपने मृत्युपर्यन्त आठ वर्षों (1379ई० से 1386ई०तक, जो इकनी मृत्यु वर्ष था) तक सम्पन्न किया। इनके वेदभाष्यों के निर्णय का यही काल है 14 शती का उत्तरार्ध। अपने ज्येष्ठ भ्राता माधवाचार्य के द्वारा इस महनीय कार्य में प्रेरित किये जाने के कारण ये भाष्य 'माघवीय' नाम से प्रख्यात है। ''वैदिक भाषा तथा धर्म के सुदृढ़ गढ़ में प्रवेश करने के लिए हमारे पास एक ही विश्वासार्ह साधन है, और वह है सायण का यही वेदभाष्य।'' हमारा तो यह निश्चित मत है कि वैदिक सम्प्रदाय के सच्चे ज्ञाता होने के कारण सायण का वेदभाष्य वास्तव में वेदार्थ की कुंजी है और वेद के दुगम दुर्ग में प्रवेश कराने के लिए यह विशाल सिंहद्वार है।

1.4.3 साम–भाष्यकार–

समसंहिता पर सायण भाष्य लिखने से पहले दो भाष्यों का पता चलता है। एक अन्य ग्रन्थकार ने संहिता के ऊपर तो अपना भाष्य नहीं लिखा, लेकिन सामवेदियों के नित्य नैमित्तिक अनुष्ठानों में आनेवाले मन्त्रों की व्याख्या लिखी। अतः तीन ही ग्रन्थकारों का अब तक पता चला है, जिन्होंने साम की पूरी संहिता पर अथवा साम के अनुष्ठाानोपयोगी मन्त्रों पर अपनी व्याख्याएँ लिखी।

माधव–

ये सामसंहिता के प्रथम भाव्यकार प्रतीत होते हैं। साम के दोनों खण्डों–छन्द आर्चिक तथा उत्तर आर्चिक–पर इन्होंने अपना भाष्य लिखा। इसका नाम 'विवरण' है। छन्द आर्चिक के भाष्य को 'छन्दसिका विवरण' तथा उत्तरार्चिक के भाष्य को 'उत्तर विवरण' नाम दिया गया है। अभी तक यह भाष्य अमुद्रितावस्था में ही पड़ा है, परन्तु इसके पता लगाने वाले सत्यव्रत सामश्रमी ने सबसे पहले अपने सायणभाष्य के संस्करण में इस भाष्य के कुछ अंश टिप्पणी के रूप में दिए है।

माधव के पिता का नाम 'नारायण' था, जिसे कुछ विद्वानों ने स्कन्दस्वामी के ऋग्भाष्य के पूरक तथा सहायक 'नारायण' से अभिन्न ही माना है, परन्तु अभी इन दोनों की अभिन्नता मानने के लिए प्रबल प्रमाण प्राप्त नहीं हुए है'; तथापि इनके आविर्भावकाल का निश्चित अनुमान किया जा सकता है। देवराज यज्वा (12शतक) ने अपने निघुण्टुःभाष्य की अवतरणिका में किसी–माधव का निर्देश किया हैं सम्भवतः यह माधव सामभाष्य–रचयिता माधव ही है। इनता नहीं, महाकवि बाणभट्ट विरचित कादम्बरी का–

रजोजुषे जन्मनि सत्त्ववृत्तये स्थितौ प्रजानां प्रलये तमःस्पृशे।
अजाय सर्गस्थितिनाशहेतवे त्रयीमयाय त्रिगुणात्मने नमः।।

मंगल पद्य माधव के साम–विवरण में भी मंगल के रूप में मिलता है। इस पद्य का 'त्रयीमयाय' शब्द यही सूचित करता है कि इसका किसी वैदिक ग्रन्थ के मंगलाचरण में होना नितान्त उपयुक्त है। अतः माधव ने सर्वप्रथम इसे अपने सामभाष्य के मंगल के लिए बनाया होगा, यही अनुमान सिद्ध है। भाष्यकार माधव वाणभट्ट के कोई पूज्य आचार्य गुरु हो सकते हैं। बाणभट्ट के पूर्वज वेद के परांगम पण्डित थे, बाण को भी, जैसा कि हर्षचरित से पता चलता है, वेदवेदा" की शिक्षा विद्वान् गुरु से मिली थी। यह घटना पूर्व अनुमान की पुष्टि मात्र करती है। यदि वह ठीक हो तो कहना ही पड़ेगा कि बाणभट्ट के पूर्ववर्ती माधव का समय वि० 657 (600ई०) से इधर का नहीं हो सकता। अतः माधव को विक्रम की सातवीं शताब्दी में मानना ठीक जान पड़ता है।

माधव का भाष्य अत्यन्त महत्वपूर्ण है क्योंकि ये साम सम्प्रदायों को विशेष रूप से जाननेवाले थे। इसका पता इस बात से चलता है, जैसा सत्यव्रत सामश्रमी ने दिखलाया है कि अनेक स्थलों पर सायण ने आर्च पाठ (ऋग्वेद में प्रदत्त पाठ) की ही व्याख्या की है, परन्तु इन स्थलों पर माधव ने साम पाठ (सामवेद में स्वीकृत पाठ, जो आर्च पाठ से भिन्न है) को दिया है। अन्य विशेषता का पता माधवभाष्य के मुद्रित हो जाने पर चलेगा। इस भाष्य के प्रकाशन वेदाभ्यासियों के लिये निःसन्देह बड़े काम का होगा।

भरतस्वामी–

भरतस्वामी ने सामसंहिता पर भाष्य लिखा था, यह भी अभी अप्रकाशित ही है। इसके

निम्नलिखित पद्य से पता चलता है कि भरतस्वामी काश्यपगोत्र के ब्राह्मण थे; इनके पिता का नाम नारायण तथा माता का यज्ञदा था, इन्होंने सामवेद की समस्त ऋचाओं के व्याख्या लिखी–

इत्थं श्रीभरतस्वामी काश्यपो यज्ञदासुतः।
नारायणार्यतनयो व्याख्यात् साम्नामृचोऽखिलाः।।

भरतस्वामी ने ग्रन्थ के आरम्भ में अपना परिचय दिया है–

नत्वा नारायणं तातं तत्प्रसादादवाप्तधीः।
साम्नां श्रीभरतस्वामी काश्यपो व्याकरोदृचम्।।
होसलाधीश्वरे पृथ्वीं रामानाथे प्रशासति।
व्याख्या कृतेयं क्षेमेण श्री" वसता मया।।

इन पद्यों से पता चलता है कि नारायण के पुत्र कश्यप भरतस्वामी ने श्रीम् जैसे प्रसिद्ध वैष्णवतीर्थ में रहते हुए होयसलाधीश्वर रामनाथ के राज्यकाल में इस भाष्य का बनाया। अपने समकालीन राजा के नामोल्लख से भारतस्वामी के समय का पूरा पता हमें चलता है।

होयसलवंश के विख्यातनामा वीर रामनाथ अपने समय के एक प्रतापी नरेश थे। इनके पिता सोमेश्वर इस वंश के प्रधान उन्नायकों में से माने जाते हैं। इन्होंने समस्त चोल राजाओं के प्रदेशों को जीतकर अपने अधीन कर लिया था। रामनाथ सोमेश्वर के द्वितीय पुत्र थे, जो देवल महादेवी के गर्भ से उत्पन्न हुए थे। सोमेश्वर ने पैतृक सिंहासन अपने प्रथम पुत्र, बिज्जल रानी के गर्भ से उत्पन्न, नरसिंह तृतीय को दिया तथा रामनाथ को अपने राज्यकाल में ही दक्षिण प्रदेशों का शासक बनाया था। पिता की मृत्यु के अनन्तर रामनाथ इस प्रान्त के शासक बने ही रहे। श्री"म् इनके ही राज्य में पड़ता था। अतः भरतस्वामी का उपुर्यक्त उल्लेख बिल्कुल ठीक है। ये अपने ज्येष्ठ भ्राता से अलग, स्वतन्त्र रूप से दक्षिण प्रदेश में शासन करते थे। महीपुर के दक्षिण–भाग में इन्होंने अपने भाई से लड़ाई भी लड़ी थी। इनके पिता के द्वारा विजित चोल प्रदेश पर इन्हीं का शासन होता था। इनके जेष्ठ भाई होयसल नरसिंह तृतीय की मृत्यु ई० सनृ 1292 में हुई, जिसके कुछ ही साल बाद (लगभग 1294 या 1295 में) ये भी यहाँ से चल बसे। इनके पुत्र विश्वनाथ इनके स्थान पर दक्षिण देश के शासक हुए, परन्तु इनकी भी मृत्यु केवल तीन वर्ष के ही भीतर हो गई। इसके बाद इनका भी प्रदेश नरसिंह तृतीय के सुपुत्र बीर बल्लाल तृतीय के पैतृक राज्य में मिल गया।

इस विवरण के आधार पर रामनाथ के शासन का अन्त वि०सं० 1352 (1295ई०) में हुआ। इससे भरतस्वामी के भाष्य का रचनाकाल सम्भवतः वि० सं० 1345 के आसपास होगा। अतः भरतस्वामी विक्रम की चौदहवीं सदी के मध्य–काल में अवश्य विद्यमान थे। ये दक्षिण भारत के रहनेवाले थे। भरतस्वामी के भाष्य तथा साणभाष्य में लगभग साठ–सत्तर वर्षों का अन्तर होगा। भरतस्वामी का भाष्य बहुत संक्षिप्त है। पूर्ववर्ती, भाष्यकार माधव से इसमें पर्याप्त सहायता ली गई प्रतीत होती है। भरतस्वामी ने साम–ब्राह्मणों पर भी भाष्य लिखा है। अतः पूरी संहिता पर इनका भाष्य होना चाहिए।

गुणविष्णु–

गुणविष्णु के साममन्त्र–व्याख्यान का नाम मिथिला तथा ब"ाल में खूब है। वहाँ के सामवेदियों के नित्य नैमित्तिक विधियों के उपयोगी साममन्त्रों की व्याख्या कर इन्होंने बड़ा भारी काम किया। ये मिथिला या ब"ाल के किसी भीग के रहने वाले थे। इनके छान्दोग्य–मन्त्रभाष्य का एक सुन्दर संस्करण कलकत्ता की संस्कृत– परिषद् ने निकाला है। इसकी प्रस्तावना में विद्वान् संपादक ने गुणविष्णु के विषय में अनेक ज्ञातव्य विषयों का विवेचन विद्वत्ता के साथ किया है।

यह छान्दोग्य मन्त्रभाष्य सामवेद की कौथुम शाक्षा पर है (हलायुधेन ये काण्वे कौथुमे गुणविष्णुना)। इन भाष्य तथा सायणकृत मन्त्रब्राह्मण के भाष्य की तुलना करने से जान पढ़ता है कि सायण ने गुण–विष्णु के भाष्य को आधार मानकर अपना भाष्य लिखा। हलायुध के द्वारा भी इस ग्रन्थ को उपयोग में लाने के प्रमाण मिलते है। इससे सम्भव है कि गुण–विष्णु–बल्बालसेन या उनके प्रसिद्ध पुत्र लक्ष्मणसेन के राज्यकाल में विद्यमान थे। अतः इनका समय विक्रम की 12वीं सदी का अन्त तथा 13वीं सदी का आरम्भ माना जा सकता है।

गुणविष्णु का 'छान्दोग्य–मन्त्राभाष्य' ग्रन्थ नितान्त विख्यात है तथा प्रकाशित भी है। इनके अन्य दो ग्रंथों का भी पता चलता है–पहला मंत्र ब्राम्हणभाष्य तथा दूसरा पारस्करगृहसूत्रभाष्य। इस ग्रंथों की रचना से ये अपने समय के एक प्रख्यात वैदिक प्रतीत होते है।

1.4.2 यजुः भाष्यकार

(क) मध्यन्दिनसंहिता के दो प्रमुख भाष्यकर है–

(1) उबट– ये आनन्दपुर के निवासी बज्रट के पुत्र थे, तथा अवन्ती में निवास करते समय राजा भोज के शासन काल में (महीं भोजे प्रशासति) इस भाष्य का निर्माण किया। फलतः इनका समय 11 वीं शती का मध्यकाल है। (भोज का राज्यकाल = 1018 से लेकर 1060 ई० तक)। पिता–पुत्र विशिष्ट नामकरण से ये काश्मीरी प्रतीत होते है। काव्यप्रकाश के टीकाकार भीमसेन उबट को मम्मट का अ नुज मानते हैं जो काल'–विरूद्ध होने से संशययुक्त मालूम पड़ता है। इनका भाष्य लध्वक्षर होने पर भी बड़ा ही प्रोज्ज्वल, प्रामाणिक और सरल है। इसमें अनेक मंत्रों के अर्थ अध्यात्मपरक भी बतलाये गये हैं। उवट मध्ययुग के एक नितान्त प्रौढ़ वेदज्ञ थे। इनकी अन्य रचानायें हैं– (क) ऋक्–प्रातिशाख्य की टीकाः (ख) यजुः प्रातिशाख्य की टीका; (ग) ऋक्सर्वानुक्रमणी पर भाष्य, (भ) ईशावास्य उपनिषद् पर भाष्य, जो सब प्रकाशित हैं।

(2) महीधर–

इनके भाष्य का नाम 'वेददीप' है, जो विशेष मौलिक न होने पर भी अर्थ की विशदता प्रकट करने में नितान्त उपादेय है। महावीर काशी के निवासी नागर ब्राम्हण थे। इनके प्राचीन पुस्तकालय की हस्तलिखित प्रतियां हाल में सरस्वती भवन पुस्तकालय में संगृहीत की गई हैं। इनके भाष्य पर उबट भाष्य की स्पष्ट छाया है, परन्तु इन्होंने निरूक्त, श्रौतसूत्र आदि से उद्धरण देकर यज्ञप्रक्रिया के विधान को सुबोध रूप में समझाया और एक प्रकार से उवट–भाष्य को स्पष्टत तथा विशद बनाया है। महावीर वैदिक होने के अतिरिक्त तंत्र–शास्त्र में मर्मविद् तान्त्रिक भी थे, जिन्होंने अपने तंत्रग्रंथ मंत्रमहोदधि का निर्माण 1645 वि.सं. (= 1588 ई.) में किया। फलतः इनका अविर्भाव काल 16 वीं शती का उत्तरार्ध है और इस प्रकार ये वबट के पांच सौ वर्षो के अनन्तर उत्पन्न हुए। ये नरसिंह के उपासक थे जिसका उल्लेख इनके ग्रंथों में बहुशः उपलब्ध है।

(ख) काण्वसंहिता–भाष्य

हलायुध–

सायण के पीछे अनन्ताचार्य, आनन्दबोध आदि अनेक विद्वानों के शुल्क–यजुर्वेद की काण्वसंहिता पर अनेक भाष्य बनाए, परन्तु सायण के पूर्ववर्ती प्रधान लेखकों में हलायुध ने इस संहिता पर अपना भाष्य लिखा। इस भाष्य का नाम 'ब्राम्हणसर्वस्व' है। इसके आरम्भ में हलायुध ने अपने विषय में कुछ वृत्त दिया है, जिससे जान पड़ता है कि वे बंगाल के अंतिम हिन्दू नरेश सुप्रसिद्ध लक्ष्मणसेन के दरबार में धर्माधिकारी के गौरवपूर्ण पद पर प्रतिष्ठित थे। यह पद उन्हें जवानी ढलेने पर मिला था। वे इसके सर्वथा योग्य थे। बाल्यकाल में वे राजपण्डित हुए। चढ़ती जवानी में श्वेत छत्र धारण करने का अधिकार तथा मान उन्हें दिया गया। अंतिम समय में वे राजा के धर्माधिकारी बने–

बाल्ये ख्यापितराजपण्डितपदं श्रेताचिंबिम्बोज्ज्वल–
च्छत्रोत्सिक्तमहामहस्तमुपदं दत्वा नवे यौवने।
यस्मै यौवनशेषयोग्यमखिलत्त्मापालनारायणः
श्रीमान् लक्ष्मणसेनदेवनृपतिधर्माधिकारं ददौ।।

राजा लक्ष्मणसेन के साथ इस संबंध से इनका समय सरलता से जाना जा सकता है। लक्ष्मणसेन ने बड़ी योग्यता से गौड़ देश का शासन किया था। सुप्रसिद्ध लक्ष्मण संवत् (लं.सं.0) के चलाने वाले ये ही विद्याप्रेमी महराज हैं। 1170 ई के लगभग इन्होंने अपने विख्यात् पिता बल्लालसेन के बाद सिंहासन पर बैठे। लगभग 30 वर्ष तक ये राज्य करते रहे। 1200 ई० में इनके राज्य का अंत हुआ। अतः इनका समय वि०सं. 1237 तदनुसार ई० सन् 1170 से 1200 तक हैं लक्ष्मणसेन के धर्माधिकारी होने के कारण हलायुध का भी यही समय होना चाहिए। अतः हलायुध का काल विक्रम की 12वीं शताब्दी का पूर्वार्ध है।

हलायुध अपने समय के एक प्रख्यात वैदिक विद्वान थे। ब्राम्हण–सर्वस्व के अतिरिक्त मीमांसासर्वस्व, वैष्णवसर्वस्व, शैवसर्वस्व तथा पंडित–सर्वस्व आदि का ग्रंथ हलायुध की लेखनी से उत्पन्न हुए। इससे ये न केवल वेद तथा मीमांस के ही मान्य पंडित प्रतीत होते हैं, प्रत्युत् आगम–विशेषतः

वैष्णव तथा शैव आगम–के भी मर्मज्ञ जान पड़ते है। अतः ऐसे योग्य व्यक्ति का राज्य के धर्माधिकारी का पद सुशोभित करना नितान्त उचित था।

सायणाचार्य ने माध्यन्दिनसंहिता के ऊपर उवटभाष्य होने के कारण अपना कोई भाष्य नही लिखा। सायण ने पूरी काण्वसंहिता पर ही अपना भाष्य लिखा। अनन्ताचार्य–ये काशी के वैदिक विद्वान तथा माध्य वैष्णव थे। 16 वीं शती इनका स्थिति काल है। इन्होंने काण्वसंहिता के उतरार्ध पर (21 आ. 40 अ. तक) अपना भाष्य बनाया है। इस भाष्य पर महीधर के भाष्य की स्पष्ट छाया है। फलतः ये उनके उत्तरकालीन ग्रंथकार हैं। स्थान–स्थान पर इन्होंने मंत्रो का अर्थ विष्णुपरक किया है। यह सम्प्रदायीनुसारी व्याख्या इनके पाण्डित्य तथा पुराणज्ञता की विशेष द्योतिका है। युक्लयजुःप्रातिशाख्य पर भी इनका एक टीका है, जा उवट की व्याख्या के सामने विशेष महत्व नहीं रखती।

आनन्दबोध भट्टोपाध्याय–

सारस्वती सुषमा पत्रिका (सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय) में आनन्दबोध भट्टोपाध्याय का काण्व–संहिता के चतुर्थ दशक (अध्याय 31–40) का भाष्य क्रमशः (सं. 2009–2011) प्रकाशित है। संपूर्ण संहिता पर इनके भाष्य मिलने की सूचना दी गई है, तो शीघ्र ही प्रकाशित होनेवाला है। ग्रंथ के अंत की पुष्पिका के अनुसार ये वासुदेवपुरी–निवासी जातवेद भट्टोपाध्याय के पुत्र चतुर्वेदी थे। इनके संबंध में केवल इतनी ही सूचना उपलब्ध है। अपने भाष्य में इन्होंने देवता ऋषि, छंद का निर्देश एवं यज्ञ तथा मंत्रों का विनियोग भी यथास्थान दिया है। इसकी भाषा सरल और सुबोध है। इसमें व्याकरण संबंधी व्युत्पतियां भी दी गई है। ब्राम्हणों आदि से उद्धरण भी इन्होंने अपने अर्थ की पुष्टि में यत्र–तत्र दिये हैं। माध्यन्दिन यजुर्वेद पर उवट और महीधर के भाष्य से इनकी तुलना करने पर ऐसा लगता है कि पर उवट विशेष लक्षित किया जा सकता है। तथापि इन्होंने अपनी मौलिकता भी प्रदर्शित की है। उदाहरणार्थ इस मंत्र के भाष्य को लें–

केतुं कृण्वत्रकेतवे पेशो मर्या अपेशसे।

समुषदिभ्रजायथाः। (माध्यदिन सं. 29। 36; काण्व सं. 31। 12)

उवट और महीधर ने 'मर्या' को विभक्ति–व्यत्यय से 'प्रर्याय = मनुष्याय' अर्थ में ग्रहण किया, किन्तु आनन्दबोध ने उसे प्रथमान्त 'मर्या' ही माना है। साथ ही यह भी कहा जा सकता है कि महीधर की भांति इन्होंने अधिक स्पष्ट अर्थ नहीं किया है। इस दृष्टि से इनकी शैलीा उवट से अधिक मिलती हुई जान पड़ती है, परन्तु बिना पूरा ग्रंथ देखे इसके विषय में कुछ विशेष कहा नहीं जा सकता।

(4) कृष्णयजुर्वेद–तैत्तिरीय–भाष्य

तैत्तिरीयसंहिता कृष्णयजुर्वेद की प्रधान संहिता है। सायणचार्य ने सबसे पहले इसी संहिता पर अपना प्रसिद्ध भाष्य लिखा। सायण के भाष्य के पहले भी अनेक आचार्यों ने इस संहिता पर अपना व्याख्यान लिखा था। इन व्याख्याकारों के विषय में हमारा ज्ञान नितान्त कम है। इनके भाष्य भी अभी तक उपलब्ध नहीं हुए हैं। इन्होंने भाष्य बनाया–इसका पता हमें केवल परवर्ती लेखकों के ग्रंथों में दिए गये उल्लेखों से ही चलता है। केवल एक ही भाष्कार भट्भाष्कर मिश्र का पूरा भाष्य मिलता है तथा सुंदर रीति से होकर प्रकाशित भी किया गया है। भट्भास्कर मिश्र का ही व्यक्तित्व इस संहिता के सायणपूर्व भाष्यकारों में विशेषरूप में परिस्फुट है। इस सामान्य वर्णन के अतिरिक्त इनका कुछ विशिष्ट वर्णन यहां किया जा रहा है।

कुण्डिन–कुण्डिन ने तैत्तिरीयसंहिता पर वृति बनाई थी, इसका पता हमें काण्डनुक्रमणीं के इस श्लोकार्ध से चलता है–

यस्याः पदकृदात्रेयो वृतिकारस्तु कुण्डिनः

पदपाठकार आत्रेय के साथ संबंध होने से कुण्डिन एक प्राचीन आचार्य प्रतीत होने हैं। बहुत संभव है कि इन्होंने गुप्त काल में अपनी वृति बनाई हो। इनका न तो ग्रंथ मिला है और न अन्य बातों का ही पता चलता है।

भवस्वामी–

आचार्य भवस्वामी ने भी इस संहिता पर भाष्य बनाया होगा। इसका पता 'बौधायन–प्रयोगसार' के आंरभ में केशवस्वामी के इस वाक्य से चलता है–'भवस्वामिमतानुसारिणा मयाय तु उभयमप्यंगीकृत्य

प्रयोगसारः क्रियेत। भट्टभास्कर ने अपने भाष्य के आंरभ में भवस्वामी का उल्लेख किया है, जिससे इनके भाष्यकार होने की बात पुष्ट होती है।

गृहदेव–

इनके तैत्तिरीयसंहिता के भाष्यकार होने में सबसे निश्चित प्रमाण देवराज यज्वा के निघंटु–भाष्य से मिलता है। भाष्य के आरंभ में देवराज यज्वा ने गुहदेव को भाष्यकार लिखा है। तैत्तिरीय आरण्यक के 'रश्मयश्च देवा गरगिरः मंत्र के गरगिरः' शब्द की गुहदेव–कृत व्याख्या को देवराज ने उद्धृत किया है, जिससे इनके तैत्तिरीसंहिता के व्याख्यकार होने की बात पुष्ट होती है। ये भी प्राचीन भाष्यकार है, क्योंकि आचार्य रामानुज ने वेदार्थसंग्रह' में गुहदेव का नामोल्लेख किया है। अतः विक्रम की आठवीं या नवीं शताब्दी में इनका होना अनुमान सिद्ध है।

क्षुर–

आचार्य क्षुर ने तैत्तिरीयसंहिता पर कोई भाष्य अवश्य लिखा था। इसका पता सायणाचार्य की माधवीया धातुवृति' में दिये गये अनेक निर्देशों से मिलता है। इनमें क्षुर का नाम भट्टभास्कर के नाम से पूर्व ही उल्लिखित है– 'यथा त्रय एनां महिमानः सचते (तै० सं० 4–3–11) – इत्यत्र क्षुरभट्टभास्करीययोः संचते समंते इति। हमारा अनुमान है कि क्षुर भाष्कर मिश्र से प्राचीन है।

भट्ट भास्कर –

इनके समय का निर्धारण करना वैदिक भाष्यकारों के इतिहास के लिए नितान्त आवश्यक है। सायणाचार्य के द्वारा निर्दिष्ट होने से इनका समय विक्रम की 15वीं शताब्दी से पहले ही होना निश्चित है। वेदाचार्य (अपरनाम लक्ष्मण' समय वित्र सं. 1300) ने अपने 'सुदर्शन मीमांसा' नामक ग्रंथ में भट्ट भास्कर मिश्र का ही नामोल्लेख नहीं किया है, प्रत्युत इनके वेदभाष्य–जिसका नाम 'ज्ञानयज्ञ' है– से भी अपना परिचय दिखलाया है। देवराज यज्वा के द्वारा इनके उल्लेख किये जाने की घटना का संकेत हम पहले कर आए है। प्रसिद्ध वैदिक हरदत्त (वि.सं. 12 वीं शताब्दी) ने एकाग्नि–काण्ड के अपने भाष्य में भास्करकृत भाष्य से विशेष सहायता ली है। इन सब प्रमाणों के आधार पर भट्ट भास्कर मिश्र का समय विक्रम की 12वीं शताब्दी के पूर्व ठहरता है। अतः इन्हे 11वीं सदी में मानना अयुक्तियुक्त न होगा। इसकी पुष्टि इस बात से भी होती है कि भास्कर के द्वारा अपने भाष्य से उद्धृत ग्रंथ तथा ग्रंथकार (जैस आर्यटीय, अमरकोष काशिका आदि) अत्यंत प्राचीन हैं। इसलिए इनका उक्त काल उचित ही प्रतीत होता है।

भट्ट भास्कर ने तैत्तिरीयसंहिता पर भाष्य लिखा है, किसका ज्ञानयज्ञ भाष्य है। यह बड़ी विद्वता से रचा है। प्रमाणरूप् से अनेक वैदिक ग्रंथ उद्धृत किए गए है। कुल वैदिक निघण्टुओं से भी अनेक प्रमाणय दिए गए हैं।

मंत्रों के अर्थ–

प्रदर्शन में कहीं–हीं भाष्कर ने भिन्न–भिन्न आचार्याभिमत अर्थों को भी दिखलाया है यज्ञपरक अर्थ का ही निर्देश इसमें नहीं है, बल्कि आध्यात्म तथा अधिदैव पक्ष में भी वेदमंत्रों का अर्थ बड़ी सुंदरता से किया गया है। उदाहरणार्थ हंसः शुचिषद् वसुरन्तरिक्षसत्' प्रसिद्ध मंत्र के 'हंस' पद की तरह से व्याख्या की गई है। अधियज्ञ पक्ष में हंस का अर्थ है– (हन्ति पृथिवीमिति हंस) अधिदैवपक्ष में हंस का अर्थ है– आदित्य तथा अध्यात्मपक्ष हंस है–आत्मा। इसी तरह से अन्य मंत्रों के भी अर्थ कई प्रकार के किए गये है। इस प्रकार की अन्य विशेषताओं के कारण यह वैदिक साहित्य में इतना महत्व रखता है।

1.4.5 अथर्व भाष्यकार

अथर्वसंहिता का भाष्य पहले पहल सायण ने ही प्रस्तुत किया। इनके पहिले किसी भी विद्वान ने इस वेद का ही संहिता पर भाष्यय नहीं लिखा। सायण ने पूरी संहिता पर भाष्य लिखा था, परन्तु छपे हुए ग्रंथों में केवल 12 काण्डों (1–4, 6–8, 11, 17–20 काण्ड) का ही भाष्य मिलता है। इस प्रकार इस वेद पर सायण–भाष्य भी अधूरा ही है।

ब्राह्मण–भाष्य–

संहिताओं के समान भिन्न–भिन्न शाखाओं के ब्राह्मणों पर भी कालान्तर में विद्वानों ने टीकायें तथा भाष्यों का प्रणयन किया। इनमें प्रधान आचार्यों का संक्षिप्त विवरण यहाँ प्रस्तुत किया

जाता है। शतपथ–ब्राह्मण–शतपथ दोनों शाखाओं–माध्यनन्दिन तथा काण्व पर भाष्य मिलता है।

(1) काण्व शतपथ पर भाष्य महाभारत के टीकाकार नीलकण्ड ने किया था। भाष्य तो मिलता नहीं, केवल उसका निर्देश वनपर्व के 162अ०के 11वें श्लोक की टीका में उन्होंने स्वयं किया है।

(2) माध्यन्दिन शतपथ–सुनते है उबट ने इस पर टीका लिखी थी। इनसे बहुत पहिले हरिस्वामी ने पूरे शतपथ पर अपना भाष्य बनाया था, जो आजकल पूरा नहीं मिलता। ये बड़े भारी वैदिक थे। ये पराशर गोत्रीय नागस्वामी के पुत्र तथा अवन्ती के राजा विक्रम के धर्माध्यक्ष थे। सौभाग्य से इनके भाष्य में रचना काल का निर्देश है। भाष्य का निर्माण 3740 कलिवर्ष (अर्थात् 538ई०) में हुआ था, जिससे स्पष्ट है कि ये विक्रम की षष्ठ शताब्दी में विद्यमान थे। यह भाष्य प्राचीन तथा प्रामाणिक है।

ऐतरेय ब्राह्मण–ऐतरेय ब्राह्मण पर निम्नलिखित भाष्य उपलब्ध होते हैं–

(1) गोविन्दस्वामी –

'दैवी' की टीका 'पुरुषकार' के कर्ता श्रीकृष्णलीलाशुक मुनि (13शती) ने 118वीं कारिका की टीका में 'गोविन्द स्वामी' का उल्लेख किया है (अनन्तशयन–ग्रन्थमाला में प्रकाशित)। यही उद्धरण 'माधवीया धातुवृत्ति' में भी मिलता है। 'बौधायनीय–धर्म–विवरण' का कर्ता सम्भवतः यही ग्रन्थकार है। इसमें कुमारिका का निर्देश और उनके प्रख्यात ग्रन्थ 'तन्त्रवार्तिक' का उद्धरण मिलता है। अतः इनका समय 8 शती के अनन्तर 13 शती से पूर्व सम्भवतः दशम शतक है।

(2) षड्गुरु शिष्य–

इन्होंने ऐतरेय–ब्रा०, ऐत०आर०, आश्रवलायन श्रौत तथा गृह्य और सर्वानुक्रमणी पर टीकायें लिखी है, जिनमें से ऐतरेय ब्रा० की टीका अभी अधूरी ही प्रकाशित है (अ०श०ग्र०) परन्तु कात्यायन की 'सर्वानुक्रमणी' की 'वेदार्थदीपिका' व्याख्या नितान्त प्रख्यात तथा सुसम्पादित है (आक्सफोर्ड से प्रकाशित)। अन्तिम टीका का रचनाकाल 1234 सं० (= 1177ईवी ग्रन्थकार ने दिया है। फलतः इनका समय 12वीं शती का मध्यकाल है।)

(3) आचार्य सायण–

इनकी टीका आनन्दाश्रम पूना से प्रकाशित है। भरतस्वामी का सामविधान ब्राह्मण पर, गुणविष्णु का छान्दोग्य ब्राह्मण पर तथा द्विजराज भट्ट का संहितोपनिषद् ब्राह्मण पर भाष्य प्रकाशित है।

तैत्तिरीय–ब्राह्मण

(1) भवस्वामी –

भट्टभास्कर के कथनानुसार इनका भाष्य वाक्यपरक था। केशव स्वामी ने (जिनका नाम 11 शतक में निर्मित 'चिकाण्ड मण्डन' में उल्लिखित है) बौधायन–प्रयोगसागरमें भवस्वामी का नाम निर्दिष्ट किया है। अतः इनका समय दशम शतक मानना उचित होगा। तैत्तिरीयसंहिता तथा तैत्तिरीय ब्राह्मण पर इनके भाष्य निर्दिष्टमात्र हैं, उपलब्ध नहीं।

(2) भट्ट भास्कर–

'तैत्तिरीयसहिता' के ऊपर भाष्य लिखने के बाद इन्होंने तैत्तिरीय ब्राह्मण पर भी अपना भाष्य लिखा।

(3) आचार्य सायण–

इन्होंने भी तैत्तिरीय–ब्राह्मण पर अपना भाष्य लिखा है जो नितान्त लोकप्रिय है।

सामवेदीय ब्राह्मण–

सामवेद के ब्राह्मणों पर सायण से पहिले भी कई आचार्यों ने टीकायें लिखी हैं। हरिस्वामी के

पुत्र जयस्वामी ने ताण्ड्य ब्राह्मण पर, गुणविष्णु ने मन्त्र–ब्राह्मण पर, भास्कर मिश्र ने आर्षेय–ब्राह्मण पर तथा भरतस्वामी ने सामविधान–ब्राह्मण पर भाष्यों की रचना की है। आचार्य सायण ने अपनी पद्धति के अनुसार इन समग्र सामवेदीय ब्राह्मणों पर अपनी व्याख्या लिखी है। गोपथ–ब्राह्मण के ऊपर किसी व्याख्या का पता नहीं चलता।

सायण के भेदभाष्य

सायण के अन्य ग्रन्थों को उतना महत्व प्राप्त नहीं है जितना इन वेदभाष्यों को। सर्वसाधारण तो इनकी अन्य रचनाओं के अस्तित्व से भी सर्वथा अपरिचित है। वह तो सायण को इन्हीं वेदभाष्यों के रचयिता के रूप में जानता है तथा आदर करता है। ये वेदभाष्य ही सायणाचार्य की कमनीय कीर्तिलता को सर्वदा आश्रय देने वाले विशाल कल्पवृक्ष हैं, जिनकी शीतल छाया में आदरणीय आश्रय पाकर सायण की कीर्तिगरिमा सदैव वृद्धि तथा समृद्धि प्राप्त करती जायेगी। जिन संहिताओं तथा ब्राह्मणों के ऊपर सायण ने अपने भाष्य लिखे, उनके नामों का यहाँ उल्लेख किया जाता है। जहाँ तक पता चलता है सायण ने ज्ञान–काण्ड की व्याख्या में किसी ग्रन्थ को नहीं लिखा।

सायण ने इन सुप्रसिद्धि वैदिक संहिताओं के ऊपर अपने भाष्य लिखे–

(1) तैत्तिरीयसंहिता (कृष्ण यजुर्वेद की)
(2) ऋग्वेदसंहिता
(3) सामवेदसंहिता
(4) काण्वसंहिता (शुक्लयजुर्वेदीय)
(5) अथर्ववेदसंहिता

सयण के द्वारा व्याख्यात ब्राह्मण तथा आरण्यक–

क–कृष्णयजुर्वेदीय ब्राह्मण–

(1) तैत्तिरीय–ब्राह्मण
(2) तैत्तिरीय आरण्यक

ख–ऋग्वेद के ब्राह्मण

(3) ऐतरेय ब्राह्मण
(4) ऐतरेय–आरण्यक

ग–सामवेद के ब्राह्मण–

(5) ताण्ड्य ब्राह्मण (पंचाविंश; महाब्राह्मण)
(6) षड्विंश ब्राह्मण
(7) सामविधान ब्राह्मण
(8) आर्षेय ब्राह्मण
(9) देवताध्याय ब्राह्मण
(10) उपनिषद् ब्राह्मण
(11) संहितोपनिषद् ब्राह्मण
(12) वंश ब्राह्मण

घ– शुक्ल यजुर्वेदीय ब्राह्मण

(13) शतपथ–ब्राह्मण

1.5 वैदिक और लौकिक साहित्य का अन्तर

वैदिक साहित्य के अनन्तर लौकिक संस्कृत में निबद्ध साहित्य का उदय होता है। लौकिक संस्कृत में लिखा गया साहित्य, विषय, भाषा, भाव आदि की दृष्टि से अपना विशिष्ट महत्त्व रखता है। लौकिक साहित्य वैदिक साहित्य से आकृति, भाषा, विषय तथा अन्तस्तत्त्व की दृष्टि नितान्त पार्थक्य रखता है।

(क) विषय–

वैदिक साहित्य मुख्यतया धर्मप्रधान साहित्य है। देवताओं को लक्ष्य कर यज्ञ–याग का विधान
तथा उनकी कमनीय स्तुतियाँ इस साहित्य की विशेषतायें है; परन्तु लौकिक संस्कृत साहित्य, जिसका प्रसार प्रत्येक दिशा में दीख में पड़ता है, मुख्यतया लोकवृत्त–प्रधान है; पुरुषार्थ के चारों अ"ों में काम की ओर इसकी प्रवृत्ति विशेष दीख पड़ती है। उपनिषदों के प्रभाव से इस साहित्य के भीतर नैतिक

भावना का महान् साम्राज्य है। धर्म का वर्णन भी है, परन्तु यह धर्म वैदिक धर्म पर अवलम्बित होने पर भी कई बातों में कुछ नूतन भी है। ऋग्वेदकाल में जिन देवताओं की प्रमुखता थी अब वे गौणरूप में ही वर्णित पाये जाते है। ब्रह्मा, विष्णु और शिव की उपासना पर ही अधिक महत्व इस युग में दिया नये देवताओं की उत्पत्ति हुई। इस प्रकार प्रतिपाद्य विषय का अन्तर इस साहित्य में स्पष्ट दीख पड़ता है।

(ख) आकृति

लौकिक साहित्य जिस रूप में हमारे सामने आता है वह वैदिक साहित्य के रूप से अनेक अंशों में भिन्नता रखता है। वैदिक साहित्य में गद्य को गरिमा स्वीकृत की गई है। तैत्तिरीय संहिता, काण्व–संहिता तथा मैत्रायणी संहिता से ही वैदिक गद्य आरम्भ होता है। वैदिक गद्य में जो सौन्दर्य दीख पड़ता है वह लौकिक संस्कृत के गद्य में दिखलाई नहीं पड़ता। अब तो गद्य का क्षेत्र केवल व्याकरण और दर्शन शास्त्र तक ही सीमित रह जाता है, परन्तु वह गद्य दुरूह, प्रसादविहीन तथा दुर्बोध भी है। इस युग में पद्य की प्रभुता इतनी अधिक बढ़ जाती है कि ज्योतिष और वैद्य जैसे वैज्ञानिक विषयों का भी वर्णन छन्दोमयी वाणी में ही किया गया है। साहित्यिक गद्य केवल कथानकों तथा गद्यकाव्यों में ही दीख पड़ता है, परन्तु क्षेत्र के सीमित होने के कारण यह गद्य वैदिक गद्य की अपेक्षा कई बातों में हीन तथा न्यून प्रतीत होता है। पद्य की रचना जिन छन्दों में की गई है, वे छन्द भी वैदिक छन्दों से भिन्न ही हैं। पुराणों तथा रामायण महाभारत में विशुद्ध 'श्लोक' का ही विशाल साम्राज्य विराजमान है, परन्तु पिछले कवियों ने साहित्य में नाना प्रकार के छोटे–बड़े छन्दों का प्रयोग विषय के अनुसार किया है। वेद में जहाँ गायत्री, त्रिष्टुप् तथा जगती का प्रचलन है वहाँ उक्त संस्कृत में उपजाति, वंशस्थ ओर वसन्ततिलका विराजती है। लौकिक छन्द वैदिक छन्दों से ही निकले हुए हैं, परन्तु इनमें लघु–गुरु के विशेष महत्त्व दिया गया है।

(ग) भाषा–

भाषा की दृष्टि से भी यह साहित्य पूर्वयुग में लिखे गये साहित्य की अपेक्षा भिन्न है। इस युग की भाषा के नियामक तथा शोधक महर्षि पाणिनि है, जिनकी अष्टाध्यायी ने लौकिक सस्कृत का भाव्य विशुद्ध रूप प्रस्तुत किया। इस युग के नियमों की मान्यता उतनी आवश्यक नहीं थी। इसीलिये रामायण, महाभारत तथा पुराणों में बहुत से 'आर्ष' प्रयोग मिलते हैं, जो पाणिनि के नियमों से ठीक नहीं उतरते। पिछली शताब्दियों में तो पाणिनि तथा उनके अनुयायियों की प्रभुता इतनी जम जाती है कि 'अपाणिनीय' प्रयोग के आते ही भाषा अत्यधिक खटकने लगती है। 'च्युत–संकारता' के नित्यदोष माने जाने का यही तात्पर्य है। आशय यह है कि वैदिक काल में संस्कृत भाषा व्याकरण के नपे–तुले नियमों से जकड़ी हुई नहीं थी, परन्तु इस युग में व्याकरण के नियमों से बाँध कर वह विशेष रूप से संयत कर दी गयी है।

(घ) अन्तस्तत्त्व–

वैदिक साहित्य में रूपक की प्रधानता है। प्रतीक रूप से अनेक अमूर्त भावनाओं की मूर्त कल्पना प्रस्तुत की गयी है, परन्तु लौकिक साहित्य में अतिशोक्ति की ओर अधिक अभिरुचि दीख पड़ती है। पुराणों के वर्णन में जो अतिशयोक्ति दीख पड़ती है वह पौराणिक शैली की विशेषता है। वैदिक तथा पौराणिक तत्त्वों में किसी प्रकार का अन्तर नहीं है, भेद शैली का ही है। वैदिक साहित्य में प्रसिद्ध इन्द्र–वृत्र, युद्ध, अकाल, दानव के ऊपर वर्षा–विजय का प्रतिनिधि है। पुराणों में भी उसका यही अर्थ है, परन्तु शैली–भेद होने से दोनों में पार्थक्य दीख पड़ता है। पुनर्जन्म का सिद्धान्त इस वैदिक युग में विकसित होकर अत्यन्त आदरणीय माना जाने लगा। ऐसी अनेक कहानियाँ मिलेंगी जिसका नायक कभी तो पशुयोनि में जन्म लेता है ओर वही कभी पुण्य के अधिक संचय होने के कारण देवलोक में जाकर विराजने लगता है। साहित्य मानव समाज का प्रतिबिम्ब हुआ करता है–इस सत्य का परिचय लौकिक संस्कृत साहित्य के अध्ययन से भली–भाँती मिलता है। मानव–जीवन से सम्बद्ध तथा उसे सुखद बनाने वाला शायद ही कोई विषय होगा जो इस साहित्य से अछूता बच गया हो। पूर्वकाल में जहाँ पर नैसर्गिकता का बोलबाला था, वहाँ अब अलंकृति की अभिरूचि विशेष बढ़ने लगी। अलंकारों की प्रधानता का यही कारण है। इस प्रकार अनेक मौलिक वैदिक तथा लौकिक साहित्य में विद्यमान है। कतिपय अन्य भिन्नतायें भी दृष्टिगोचर होती हैं–

(1) वैदिक साहित्य तत्कालीन जनभाषा का साहित्य है, संस्कृत भाषा का काव्य–साहित्य अभिजातवर्ग

की साहित्यिक भाषा का साहित्य है। (1) वैदिक साहित्य में प्राकृतिक शक्तियों का कीर्तन है, परन्तु संस्कृत का साहित्य मानव–जीवन का साहित्य है। (3) वैदिक साहित्य ग्राम्यजीवन का साहित्य है, जब आर्य लोग पशुपालन तथा कृषि के द्वारा अपनी जीविका अर्जन करते थे; संस्कृत साहित्य नागरिक जीवन का साहित्य है, जब बड़े–बड़े राजाओं के वैभव से महनीय नगरों की स्थापना की गई और जीविका के साधनों में पर्याप्त विस्तार हो गया। (4) वैदिक साहित्य उस समाज का चित्रण है जिसमें आर्य और दस्यु, विजेता तथा विजित इन दो वर्गों की ही सत्ता थी; संस्कृत का साहित्य चातुर्वर्ण्य का साहित्य है, जिसमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र के अधिकारों का अलग–अलग निर्धारण कर दिया गया था, तथा ये परस्पर सामंजस्य के साथ अपना जीवन बिताते थे। (5) वैदिक साहित्य कल्पना तथा भावना के विशुद्ध रूप पर आश्रित होने वाला साहित्य है, जहाँ कल्पना नैसर्गिक रूप में प्रवाहित होकर हृदय के भावों का अनाविल रूप चित्रित करती है; संस्कृत का साहित्य कलात्मक साहित्य है, जिसमें कला और शास्त्र का, प्रतिभा तथा व्युत्पत्ति का मौलिक कल्पना और शास्त्र–नैपुण्य का संमिश्रण रचना का मुख्य आधार है

बोध प्रश्न–

1. अलौकिक परिहार वतलाने वाले ग्रन्थों को कहते है।
   (क) पुराण (ख) साहित्य
   (ग) ब्राह्मण (घ) वेद
2. ऋक का अर्थ विषय है।
   (क) शस्त्र (ख) अस्त्र
   (ग) ज्ञान (घ) बुद्धि
3. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए–
   (क) शतपथ ब्राह्मण के विख्यात भाष्कार.......................................थें
   (ख) तैत्तिरीय संहिता पर वृत्ति...ने बाई थी।
   (ग) वैदिक साहित्य मुख्यतया...साहित्य है।
4. निचे दिये हुए वाक्यों में सही वाक्य के सामने (√) सही का निशान तथा गलत के सामने (×) गलत का निशान बनाए।
   (क) साम संहिता के प्रथम भाष्कार माधव है। ( )
   (ख) कुण्डिन तैत्तिरीय ब्राह्मण पर अपना ( )
   (ग) लौकिक साहित्य के नियामक तथा शोधक पाणिनी है।( )

1.6 सारांश

इस इकाई के अध्ययनोपरान्त आपने वेद के नामकरण तथा उनके अस्तित्व को जाना। वेद के विभाजन तथा उनकी संहिता के बारे विस्तृत अध्ययन किया साथ ही वेदों के प्रमुख भाष्यकारों का यथोचित अध्ययन किया। यहाँ यह जानना अतिआवश्यक है कि क्या वैदिक साहित्य का ही रूप लौकिक साहित्य है अथवा इनमें कुछ पार्थक्य भी है इसलिये इनके विषय में इस इकाई के माध्यम से विस्तृत चर्चा कि गई है।

वेद स्वयं अपौरूषेय है जिसकी उत्पत्ति स्वयं ब्रह्मा द्वारा माना गया है। अतः इसके विषय में ज्ञान प्राप्त करना ही एक महान कार्य है परन्तु इस इकाई के माध्यम से मुख्य वैदिक संहिता, उनके भाष्यकार तथा वैदिक एवं लौकिक साहित्य के मध्यान्तर का विस्तृत रूप अपने अन्तर्मन में उतार सकेंगे।

1.7 शब्दावली

(1) परिहार–छोड़ देना
(2) अपौरुषेय–जोपुरुष के द्वारा उत्पन्न हो
(3) नामोल्लेख–नाम का उल्लेख
(4) तन्नियोजित–जिसके लिये नियोजित
(5) अन्तस्तत्व–अन्दर के तत्व
(6) अध्ययनोपरान्त–अध्ययन के उपरान्त

(7) यथोचित–जैसा उचित हो

1.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

(1) (घ)
(2) (क)
(3) (क) स्कन्दस्वामी (ख) कुण्डिन (ग) धर्म प्रधान
(4) (क) (√) (ख) (×) (ग) (√)

1.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

(1) आचार्य वलदेव उपाध्याय–वैदिक साहित्य एवं संस्कृति
(2) संस्कृत वाड्.मय का वृहद् साहित्य (वेदखण्ड)–पद्मभूषण आचार्य श्री वलदेव उपाध्याय

1.10 अन्य उपयोगी ग्रन्थ

(1) वेद भाष्य भूमिका–संग्रह
(2) आचार्य शायण और माधव–आचार्य वलदेव उपाध्याय
(3) भाव्य भूमिका–स्कन्द स्वामी

1.11 निबन्धात्मक प्रश्न

(1) वैदिक संहिताओं का परिचयात्मक रूप प्रस्तुत किजिए।

(ख) प्रमुख भाष्यकारों का परिचय बताते हुए उनके द्वारा कृत वेदभाष्यों को प्रस्तुत किजिए।